Vol. 10
Issue 2
15 July 2019

ISSN 0975 1254 (PRINT)
ISSN 2249-9180 (ONLINE)
www.shodh.net

A Refereed Research Journal
And a complete Periodical dedicated to
Humanities & Social Science Research

शोध संचयन

दादूपंथी संत नारायणदास के सार्वभौमिकः मूल्य वर्तमान परिप्रेक्ष्य में प्रासंगिकता

बीज शब्द :

हिंदी भक्ति धारा, भारतीय समाज, दादू दयाल, संत नारायणदास

भारतीय संस्कृति प्राचीन काल से ही अमूल्य-अथाह निधि अपने गर्भ में संचित किए हुए है। सम्पूर्ण विश्व को इसने शरणागत का अभय दान दिया है । प्रतिदान की आकांक्षा किसी से नहीं की। पौराणिक काल से यह तपोभूमि स्वयं की आहुति दे कर किंचित वर्ग को सुख-समृद्ध बनाने का प्रयास करते हुए अथाह खजाने लुटाती रही है। सदियों से आततायियों ने इस भूमि को कभी माँ के रुप में त्याग-बलिदान की मूर्ति मानकर तो कभी प्रेमिका बनाकर रौंदने व लूटने का कार्य किया। तदन्तर काल से विभिन्न संस्कृतियों के आवागमन होने पर भी हमारे शाश्वत मूल्य कभी खंडित नहीं हुए बल्कि सांस्कृतिक संगम के अच्छे-बुरे अनुभव से हम सद्भावों को ग्रहण करते रहे और दुर्भावना का त्याग करते रहे। इस धरा पर सत्य-असत्य, न्याय-अन्याय के युद्ध सदैव होते रहे लेकिन जीत सत्य व न्याय की ही हुई है। ये मूल्य विगत काल में भी शाश्वत थे व आज भी जीवंत हैं। विश्वभर ने यहाँ ज्ञानार्जन कर नैतिक मूल्यों को ग्रहण किया है। संतों ने मूल्य- दर्शन का अगवा बनकर इन्हें पुनः स्थापित करने का बीड़ा उठाया। कबीर तुलसी, नानक व दादू दयाल सहित संतों की दीर्घ परम्परा ने अपने उपदेशों के माध्यम से मानव मूल्यों को सर्वोपरि बताकर लोकहित का प्रखर शंखनाद किया। दादूपंथ परम्परा में पुष्कर के संत नारायण दास ने आधुनिक काल में अपने उपदेशों के माध्यम से सार्वभौमिक मूल्यों का प्रचार-प्रसार किया । अपने साहित्य सृजन से प्राणी मात्र के कल्याण हेतु मानव मूल्यों को जीवंत बनाकर प्रस्तुत किया। पुष्कर, अजमेर जैसे साम्प्रदायिक सद्भावना स्थल पर सभी धर्मों व सम्प्रदाय के लोगों के प्रति आत्मियता रखते हुए प्रेम व सौहार्द्र का संदेश दिया।

*****

डॉ रेखा शेखावत
असिस्टेंट प्रोफेसर हिंदी,
राजकीय महाविद्यालय, सतनाली,
महेन्द्रगढ़, हरियाणा

दादूपंथी संत नारायणदास के सार्वभौमिक मूल्य वर्तमान परिप्रेक्ष्य में प्रासंगिकता

मध्ययुग में भक्त कवियों ने निराश भारतीय जनता के समक्ष ईश्वर को सर्वशक्तिमत्ता घोषित कर लोगों को सम्बल दिया। वहीं कबीर, दादू व जायसी जैसे संतों ने राजा-प्रजा, हिन्दू मुसलमान, सवर्ण-अवर्ण, अमीर-गरीब, ज्ञानी व निरक्षर लोगों के बीच समन्वय के सेतु निर्मित किये। किसी कवि ने अपनी दृष्टि से सामाजिक जीवन को प्रभावित किया और किसी ने दूसरी धारा के बल पर अपने मत प्रकट किये। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल कहते हैं कि 'अपने पौरूष से हताश जाति के लिए भगवान की भक्ति और करूणा की ओर ध्यान ले जाने के अतिरिक्त दूसरा मार्ग ही क्या था'[1] मध्यकाल में पूरे भक्ति आंदोलन का सारतत्त्व हिन्दू-मुसलमानों की ईश्वरीय तत्त्व के प्रति ऐक्य भावना की स्थापना कर मानवतावाद को सर्वोपरि रखकर सार्वभौमिक मूल्यों को तरजीह देना था।

पुष्कर दत्त शर्मा ने लिखा है कि ''शाश्वत-साहित्य में भी युगदर्शन होता है किन्तु इससे अधिक दर्शन उसमें युग-युग का होता है ऐसा साहित्यकार युगद्रष्टा ही नहीं युगसृष्टा भी होता है। उनकी दृष्टि बाह्य में ही उलझकर नहीं रह जाती, बल्कि आंतरिक चिर सौन्दर्य तक पहुँचकर वहीं विचरण करने लग जाती है। इससे विशाल मानवीय हित व मानवीय धर्म की अभिव्यक्ति होती है। चूंकि ये सामान्य मानवीय भाव अपरिवर्तनीय होते हैं, अत: इन पर आधारित साहित्य भी एक युग से नहीं, बल्कि युग-युग से संबंद्ध हो जाता है।''[2]

इस विराट आंदोलन में कवियों को नये विषय मिले जिससे मानव ने भौतिक सत्ता से हटकर ईश्वरीय तत्त्व रूप में स्वयं के लिए मोक्ष का मार्ग तैयार किया। मोक्ष का मार्ग मानव के हृदय से ही प्रारम्भ होकर सार्वभौमिक मूल्यों, प्रेम, दया, सत्य, अहिंसा, अपरिग्रह, सहानुभूति, सदाचार, परोपकार, उदारता, पर-दुखकातरता, शुद्धाचरण, कर्तव्यपालन, सहित तप-त्याग व देशानुराग के भाव को ग्रहण कर मानव-धर्म की स्थापना तक पहुँचा।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल कहते हैं कि ''कबीर तथा अन्य निर्गुण पंथी संतों के द्वारा अन्तस्साधना में रागात्मिका 'भक्ति'और 'ज्ञान' का योग तो हुआ, पर कर्म की दशा वही रही जो नाथपंथियों के यहाँ थी। इन संतों के ईश्वर ज्ञान स्वरूप और प्रेमस्वरूप ही रहे, धर्म स्वरूप नहीं हो पाए।''[3]

ईश्वरीय न्याय ने लोगों के मन में भरोसा पैदा किया और आचरण की शुद्धता पर बल दिया। यही उद्देश्य, तुलसी की लोकमंगल की साधना, कबीर का आडम्बरों पर करारा प्रहार एवं दादू का विनम्रतापूर्वक सामाजिक कुरीतियों को दूर कर समानता, प्रेम व दया भाव सहित साम्प्रदायिक सद्भाव की स्थापना करना बना। रामानन्द की शिष्य परम्परा में दादू नहीं है लेकिन कबीर व अन्य संतों का पूर्ण प्रभाव इन पर रहा। इन्हें राजस्थान का कबीर कहा जाता है।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी लिखते हैं कि दादू तुलसीदास के समकालीन थे। वे कबीरदास के मार्ग के अनुगामी थे। उनकी उक्तियों में बहुत कुछ कबीरदास की छाया है। फिर भी वे वही नहीं थे जो कबीरदास थे। संभवत: समाज के निचले स्तर से उनका भी आविर्भाव हुआ था, जन्मगत अवहेलना को लेकर इनका भी विकास हुआ था, पर उस युग तक कबीर का प्रवर्तित निर्गुणमत वाद काफी लोकप्रिय हो गया था। नीच कही जाने वाली जातियों में उत्पन्न महापुरूषों ने अपनी प्रतिभा और भगवन्निष्ठा के बल पर समाज के विरोध का भाव कम कर दिया था। उनके स्वभाव में कबीर के मस्तानेपन के बदले विनय मिश्रित मधुरता अधिक थी। सामाजिक कुरीतियों, धार्मिक रूढ़ियों और साधना सम्बन्धी मिथ्याचारों पर आघात करते समय दादू कभी उग्र नहीं होते। अपनी बात कहते समय वे बहुत नम्र और प्रीत दिखते हैं।[4]

दादू सम्प्रदाय में दीक्षित अधिकांश शिष्य इनके मूल्यों एवं आदर्शो को ग्रहण कर अपने पंथ का प्रचार-प्रसार करते हुए समाज में ऐक्य भाव को स्थापित करने में कारगर रहे। इन्हीं ही परम्परा में पुष्कर के संत नारायणदास का प्रादुर्भाव हुआ। पुष्कर में एक प्रसिद्ध दादू द्वारा है। वह सर्वसाधारण के चंदे से बना था और उद्वदास जी उसकी देखरेख करते थे। उसका संचालन श्रीमती साध्वी ज्ञानीदेवी जी करती थी। यह वाराह घाट के समीप अटमटेश्वर के मंदिर के साथ लगता हुआ पुष्कर की छोटी बस्ती में हैं। स्वामी नारायणदास जमात उदयपुर के अखाड़े, लक्ष्मीदास जी के स्थान सनोधा में दीक्षित हुये थे एवं धनराम जी के शिष्य थे। इन्होंने जमात को त्याग कर विरक्तों में प्रवेश किया तथा जगह-जगह भ्रमण के पश्चात पुष्कर में स्थायी रूप से रहने लग गये। इनका साधना धाम श्री कृष्ण कृपा कुटीर है, जो पुष्कर से पंचकुण्ड जाते समय मार्ग में पड़ता है। विक्रम संवत 1960 की रामनवमी का इनका जन्म है। मूल नक्षत्र में जन्मने के कारण व पिता पर भार होने से इन्हें बाल्यावस्था में ही दादू द्वारे में धनराम जी को भेट कर दिया था। फिर ये उदयपुर जमात में रहे। आश्रम वाले इन्हें शिक्षा हेतु नारायणा, जयपुर ले आये। ये तीन-चार वर्ष

नारायणा में रहे। इनकी उम्र अभी 17 वर्ष हो गई थी तो आश्रम वालों ने इन्हें आमेर भेजा। इन्होंने श्री दादू महाविद्यालय, जयपुर में रहकर पढ़ने की संचालकों से प्रार्थना की लेकिन उम्र अधिक होने के कारण इन्हें मना कर दिया गया। तीखे अनुभवों को लेकर ये वहाँ से भगवद् भजन हेतु निर्णय कर चले कि विधिवत् शिक्षा नहीं हुई तो क्या भगवान की आराधना करने पर कोई पाबंदी नहीं है और न ही उपाधि की आवश्यकता है। वि.स. 1985 के भैराणा के मेले में इन्हें रात्रि जागरण के दौरान दादू जी का आभास हुआ और वहीं से उनका जीवन बदल गया। कवित्व शक्ति प्राप्त होने के साथ ही मुख से श्रेष्ठ पद भी मुखरित होने लगे। कीर्तन व साथ ही काव्य सृजन करने लगे। इनका कुछ साहित्य प्रकाशित अवश्य हुआ लेकिन प्रचार के अभाव में अल्पज्ञात है। मेरा इनके साहित्य पर पहला शोध होने से अब इसका जिम्मा मैंने ही लिया है ताकि जो अप्रकाशित व अल्पज्ञात समृद्ध संत साहित्य है वह प्रबुद्ध शोधार्थियों व समाज के समक्ष आये एवं इनके साहित्य से समाज को मार्ग-दर्शन प्राप्त होगा वह आज की बिगड़ती समाज व्यवस्था हेतु अवश्य ही सुधारक साबित होगा।

डॉ भोलाशंकर व्यास ने कहा कि ''सामाजिक भेद-भाव की सामंती मान्यता को करारी चोट पहुँची और यह समाज सुधार का स्वर कमोबेश मध्व, निम्बार्क, बल्लभ और चैतन्य जैसे वैष्णव आचार्यो के सि)ान्तों का प्रधान पक्ष बन बैठा जहाँ भगवद् चरणों में अर्पित होने पर नीच कुलोत्पन्न पुरूष और नारी भी सम्मान्य माने गये।''[5]

नारायणदास ने निर्गुण व सगुण दोनों ही रूपों में ईश्वर की सत्ता को स्वीकार किया है। अजमेर जैसे साम्प्रदायिक-सद्भावना स्थल पर रहते हुए संत ने अपने उपदेशों में सभी जाति विशेष के स्त्री पुरूषों की समस्याओं का समाधान करने का प्रयास किया है। इनका साहित्य नैतिक-मूल्यों का पर्याय हैं।

सदवचन सदकर्म व अहिंसा पर बल देते हुये ये शिक्षा देते है कि-

'सत्य तुल्य नहिं धर्म है, मिथ्या सम नहिं पाप।
कर्म, वचन, मन से रहो, सच्चे चहो न ताप।।[5, 6]

अर्थात् मानव को सत्याचरण पर बल देते हुये झूठ का त्याग कर देना चाहिए। विषया-वासना से दूर रहकर इन्द्रिय निग्रह पर बल देते हुए कवि कहते है-

''जप, तप, तीर्थ, यज्ञ नहिं कीन्हा, नहिं इन्द्री मारी।
कुछ न होत अब क्षीण हुई है, देह शिक्त सारी।।[7]

विषयों का दास बन कर मनुष्य अपना सम्पूर्ण जीवन व्यर्थ गवा देता है और जब उसे बोध होता है तब तक उसका शरीर दुर्बल व वृद्ध हो जाता है।

सगुण व निर्गुण में भेद नहीं करते हुए कवि कहते हैं कि भगवान कृष्ण गीता में सम्पूर्ण मानव जाति को कर्म का संदेश देते हैं एवं साथ विषयों में लीन मनुष्य को नाम-स्मरण का महत्त्व बताते हैं।

''गीत गोपाल का नाशक है भव जाल।
'नारायण' प्रतिदिन पढ़ो, विषय वासना टाल।।[8]

सज्जन पुरूषों का महत्त्व अंकित करते हुए स्वामी जी कहते हैं ये उस वृक्ष के समान है जिसे लोग फल तोड़ने के लिए भी पत्थर ही मारते हैं व काटते हैं वह फल सहित उन्हें छाया भी प्रदान करता है।

''दुखदाता को भी सदा, सुख दे संत सुजान।
तरू निज छेदक जनों को, छाया करत प्रदान।।9

संत नारायणदास ने श्री दादूवाणी पर गिरार्थ टीका लिखी है। इससे सद्गुरू की महिमा, मानवीय मूल्यों का बखान, धर्म व संस्कृति का समन्वय, भक्ति में सभी पंथों का समन्वय, छूत-अछूत के भेद को मिटाना एवं ईश्वर जीव, जगत व माया आदि सभी को अंग निरूपण करके लोककल्याण हेतु समर्पित किया है।

''काम, क्रोध, मद भंजनि, लोभ मोह हननी।
साधक जन मन रंजनि, शांति क्षमा जननी।।[10]

संत साहित्य द्वारा मानव के हृदय को विचलित करने वाले सभी दुर्गुणों से छुटकारा पाने का मार्गदर्शन है। नारायणदास दादू जी से ऐसी वाणी की व उत्तम भावों की कृपा चाहते हैं जिससे सज्जन पुरूष छल, निन्दा, मिथ्या व द्वेष से दूर रहकर समाज में सम्मान को प्राप्त करें। वे संदेश देते हैं-

''सेवा भाव समाज मान्यगण में, होवे हमारा सदा।
मिथ्या वाद-विवाद भेद छल के, साथी न होवे कभी।।
आशा हानि गलानि द्वेष मन को, छू न सके लेश भी।
दादू दीन दयालु ज्ञान जलधे, ऐसी कृपा कीजिये।।[11]

जब मानव अंह भाव का त्याग कर देगा तभी वह लोक सेवक बन सकता है तथा स्वयं का बौद्ध कर पाता है। धन सम्पत्ति दुख के कारक है। इनका लालच व यश का मोह मानव को नहीं रखना चाहिए-

''तज धन लालच लोभ, लोकप्रिय होने का।
'नारायण' संकल्प त्याग, वृथा गौन का।।[12]

इन पर मध्यकालीन निर्गुण व सगुण सभी संतों का प्रभाव है। दादू जी ने प्रेम व विनम्रता को शीलवान मनुष्य का आवश्यक

गुण बताया परमात्मा के प्रेम में मग्न विरही आत्मा कहती है कि-
''प्रेम मगन रस पाइये, भक्ति हेत रूचि भाव।
विरह विश्वास निज नाम सों, देव दया कर आव।।''[13]

मैनेजर पाण्डेय कहते हैं कि ''वैसे तो कृश्ण की सगुण लीला के गायक सूरदास की कविता में आदि से अंत तक प्रेम के उल्लास से भरपूर जीवन के उत्सव का सर्वव्यापी संगीत है जिससे तन्मयता से हटकर किसी वाद-विवाद के लिये कोई जगह नहीं है, फिर भी सूर ने ''भ्रमरगीत'' के उद्धव गोपी संवाद में ज्ञान बनाम भक्ति और निर्गुण बनाम सगुण के लिए अवसर निकाल ही लिया है।''[14]

संत काव्य सामंतवादी व रूढ़िवादी परिवेश में मानवतावाद की अभिव्यक्ति है। यह सांस्कृतिक जागरण की प्रखर अभिव्यक्ति है जो मानवीय अनुभवों की उपज है। संत-साहित्य सार्वभौमिक मूल्यों की स्थापना कर अतीत, वर्तमान व भविश्य को दिशा-निर्देशित करता है।

सार्वभौमिक मानव मूल्यों की अभिव्यक्ति, मानव प्रेम के रूप में, लोकधर्म के रूप में मानवता के कल्याण सहित सामाजिक विशमता एवं आडंबरों के खंडन के रूप में नारायणदास ने अपने साहित्य में की है। संतों ने मानवीय एकता, सामाजिक समरसता एवं समन्वयता की भावना को धारण कर लोक जागरण की अभिव्यक्ति को अपने उपदेशों में मुखर की है। दादूपंथी संतों की वाणी अखिल विश्व को वसुधैव-कुटम्बकम का संदेश प्रेशित करती है।

इन्होंने शोषित पीड़ित व वंचित समुदाय में आत्म सम्मान एवं आत्मविश्वास जागृत कर मानव धर्म को स्थापित किया तथा भेद दृष्टि को दूर कर सभी को एक परमतत्त्व से उत्पन्न बताया। यह तत्त्व दर्शन जाति-पांति, छुआछूत, ऊँच-नीच का विरोध कर मानवतावाद की प्रतिष्ठा करता है। डॉ करूणा शंकर उपाध्याय कहते हैं कि ''संतमत में समाज, विवाह, परिवार, धर्म, राष्ट्र, राज्य, समेत प्राय: सभी संस्थाओं की जड़बद्धता का अतिक्रमण किया गया है। सारे संत कवि पारिवारिक अभिजात्य तथा जाति-पांति और वर्णव्यवस्था के स्वत: खण्डन थे।''[15]

इन्होंने जीवन का सीधा साक्षात्कार किया और उसे जन भाषा में ही जनता तक अपने गीतों, भजनों व उपदेशों के माध्यम से पहुँचाया। संत-साहित्य जन-मानस के हृदय का दर्पण है जिसमें प्रेम, घृणा, उल्लास एवं वेदना सभी समाहित है। दादूपंथी नारायण दास के साहित्य में इन्हीं मानव-मूल्यों के माध्यम से प्रत्येक मनुष्य को जागृत करने हेतु संदेश दिया गया है। आज संत साहित्य के सार्वभौमिक-मूल्य आधुनिक समाज की टकराहट को दूर कर प्रेम व सौहार्द्र का संदेश सम्पूर्ण मानव जाति को प्रेषित कर रहा है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद पृष्ठ सं. 39
2. डॉ. मोतीलाल मेनारिया, साहित्य के मान और मूल्य राजस्थान साहित्य अकादमी, उदयपुर प्र. संस्करण-1961, पृष्ठ संख्या-110
3. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, पृश्ठ संख्या 42
4. हजारी प्रसाद द्विवेदी, हिन्दी साहित्य, उद्भव और विकास राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली मूल संस्करण 1952, 11 वीं आवृत्ति 2013, पृश्ठ 86
5. डॉ. भोलाशंकर व्यास, साहित्य का इतिहास लेखन: समस्या-समाधान, राजस्थान साहित्य अकादमी, उदयपुर प्रथम संस्करण-1977, पृष्ठ संख्या 49
6. श्री नारायणदास, सद्वचन सुधावली (श्री नारायण कवितावली, प्रकाशन, श्री दादू दयालु महासभा, जयपुर) शर्मा प्रिन्टर्स पुरानी मण्डी, अजमेर। प्रथम संस्करण वि.स. 2040 पृश्ठ संख्या 115
7. श्री नारायणदास, स्त्रोत सुधाह्रद (ब्रहताश्टक) प्रकाशक श्री दादू दयालु महासभा, जयपुर वि.स. 2026
8. श्री नारायणदास, श्री गीता गरिमा-श्री दादू पंथ परिचय भाग तृतीय श्री दादू दयालू महासभा जयपुर प्र.स. विक्रम संवत 2036, पृष्ठ संख्या 315
9. स्वामी नारायणदास- श्री कृष्णकृपा फल प्रकाशक-श्री दादू दयालु महासभा, जयपुर वि.स. 2015 पृष्ठ संख्या 169
10. श्री नारायणदास, स्त्रोत सुधाह्रद (श्री दादूवाणी प्रार्थनाश्टक) प्रकाशक मंत्री स्वामी जयराम दास स्मृति ग्रन्थ शर्मा प्रिन्टर्स, अजमेर। प्रथम संस्करण 1975 पृष्ठ संख्या 180
11. श्री नारायणदास जी, स्त्रोत सुधाह्रद-दादू प्रार्थनाष्टक प्रकाशक मंत्री स्वामी जयराम दास स्मृति ग्रन्थ शर्मा प्रिन्टर्स, अजमेर। प्रथम संस्करण 1975 पृश्ठ संख्या 188
12. श्री नारायणदास, श्री उतम उपदेश, प्रकाशक श्री दादूदयालु महासभा, जयपुर, प्रथम संस्करण वि.स. 2027, पृश्ठ संख्या 169
13. श्री नारायणदासजी, श्री दादू वाणी (श्री दादू गिरार्थ प्रकाशिका टीका सहित) प्रकाशक-श्री दादू दयालु महासभा, जयपुर संख्या 2007 पृ.सं. 67
14. मैनेजर पाण्डेय, भक्तिकाव्य और हिन्दी आलोचना (अनभै सांचा (सं) वाणी प्रकाशन: नई दिल्ली 2012, पृश्ठ संख्या 15
15. डॉ. करूणा शंकर उपाध्याय, मध्यकालीन काव्य चिन्तन और संवेदना, राधाकृष्ण प्रकाशन, जी-17, जगतपुरी दिल्ली, 2003 पृश्ठ संख्या 13

◆◆◆